International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 158-160

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 158-160
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 30-10-2020
Accepted: 28-12-2020

मनीष शर्मा
शोधच्छात्र, संस्कृत- विभाग,
पंञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ,
पंजाब, भारत

Corresponding Author:
मनीष शर्मा
शोधच्छात्र, संस्कृत- विभाग,
पंञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ,
पंजाब, भारत

वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

मनीष शर्मा

भूमिका

वेदों का अर्थ जानकर हम भारत की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि इनकी विषयवस्तु प्रधानधया धर्म से सम्बद्ध है, क्योंकि उस योग का लोक-साहित्य सुरक्षित नहीं हो सका, तथापि इस धार्मिक साहित्य में भी लोकजीवन का महत्वपूर्ण रूप झलकता है।इसके आधार पर वैदिक युग की सभ्यता और संस्कृति का अनुशीलन हो सकता है। 'वेदऽखिलो धर्ममूलम्' वाक्य के अनुसार हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में वेद व्यापक रूप से प्रभावित करते रहे हैं। वेदकालीन समाज पर दृष्टि डाली जाए तो ज्ञात होगा कि तत्कालीन सामाजिक जीवन में सुव्यवस्थित समन्वय स्थापित किया गया था, और कुछ आधार स्तम्भ थे जिनके उपर समग्र जीवन आश्रित था। उनमें सबसे महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है पारिवारिक जीवन तथा शिक्षा। शिक्षा पारिवारिक जवन के अन्तर्गत ही शामिल हो जाती है क्योंकि परिवार ही प्रथम शिक्षालय होता है। परिवार की परिभाषा देते हुए 'गोल्डस्टीन' ने लिखा है – परिवार वह उद्गम स्थान है, जिसमें भविष्य का जन्म होता है और पोषण का केन्द्र है, जिसमें नये प्रजातन्त्र का सम्बन्ध भूतकाल से होता है परन्तु सामाजिक उत्तरदायित्व और सामाजिक विश्वास के द्वारा परिवार भविष्य से भी सम्बन्धित है।

वेदों में अंकित पारिवारिक जीवन संयुक्त परिवार की प्रथा पर आश्रित था। सभी सदस्य गृहपति के संरक्षण में रहकर उनके आदेशों का पालन करते थे। [1] पिता परिवार का गृहपति होता था। माता-पिता का अपनी सन्तान पर पूरा अधिकार रहता था। जैसा कि शुनःशेप के यूपस्तम्भ में बाँधे जाने के उल्लेख से सिद्ध होता है।

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपाद मुञ्चो। अशमिष्ट हि षः।। [2]

यहाँ नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है, अपितु पिता के महत्त्व का वर्णन है, तथा सन्तान का अपने माता-पिता के प्रति समर्पण का। पारिवारिक जीवन में माता का स्थान भी बहुत महत्वपूर्ण माना गया था। घर की व्यवस्था, बच्चों का लालन-पालन आदि माता की ही जिम्मेवारियाँ थीं। वैदिक काल में यद्यपि पिता परिवार का मुखिया होता था तथापि माता का भी कम महत्त्व नहीं था। पिता की अपेक्षा माता की हजार गुणी अधिक महिमा बताई गई है।

पितृर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते। [3]

समावर्तन संस्कार के अवसर पर वैदिक गुरु शिष्य को स्वयं व पिता से पहले माता के प्रति भक्तिमान होने का उपदेश देता हुआ कहता है-

मातृदेवो भव, पितदेवो भव, आचार्य देवो भव। [4]

इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में नारी जाति का सम्मान था। आज भी नारी उतनी ही सम्मानीय है, आदरणीय है क्योंकि आज भी नारी की वही जिम्मेवारियाँ हैं। यदि व्यक्ति के जीवन में शिक्षा की बात की जाए तो माँ अर्थात् नारी जाति ही बच्चे की प्रथम गुरु होती है। वेदकालीन समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली थी, जहाँ तीन पीढी के सदस्य एक साथ रहते थे। जहाँ केवल एक साथ भोजन करने का उल्लेख ही नहीं अपितु एक साथ कार्य सिद्धि करने का भी उल्लेख है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में एकता के महत्त्व का ज्ञान कराते हुए संयुक्त रहने का आदेश दिया गया है कि तुम यदि मिलकर रहे तो सौभाग्य देवता तुम्हारे अनुकूल रहेंगे।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समुव्रता।
सं वोऽयं ब्राह्मणस्पतिर्गभः सं वो अजीगमत्।। [5]

वेदकालीन परिवार व्यक्ति विशेष को शिक्षा देता था कि समाज में जीवन-यापन किस प्रकार किया जाए। न केवल तत्कालीन परिवार अपितु आज भी परिवार से प्रथम शिक्षा मिलती है जीवन जीने के ढंग की। व्यवहारिक जीवन की मुख्य-मुख्य बातें जो व्यवहरिक जीवन का आधार है, प्रत्येक मनुष्य परिवार से ही सीखता है। तत्कालीन परिवार बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देकर आगे की शिक्षा के लिए गुरुकुल में भेज देते थे। उस समय शिक्षा प्राप्ति गुरुकुल में होती थी। आज वर्तमान युग में शिक्षा-प्रणाली गुरुकुल रूप नजर नहीं आती, उनका स्थान आधुनिक शिक्षा पद्धति ने ले लिया है। वेदकालीन शिक्षा पद्धति गुरुकुल पद्धति थी। वैदिक काल में शिक्षा की स्थिति बहुत अच्छी थी। शिक्षा राज्य प्रशासन के अधीन न होकर स्वतन्त्र आचार्यकुलों के अधीन थी। उनके संचालन की सम्पूर्ण जिम्मेवारी कुलाधिपति आचार्य की होती थी। किन्तु राज्य प्रशासन का भी यह कर्त्तव्य होता था कि वह इस बात का सदा ध्यान रखें कि आश्रमों में जहाँ विद्यार्थी अध्ययन करते हैं, किसी प्रकार की क्षति न होने पावे। शिक्षा के ६ घटक हैं – शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाकेन्द्र, शिक्षा का विषय, माता-पिता तथा समाज। वैदिक काल में शिक्षा प्रदाता के लिए 'ब्रह्मन्' शब्द का प्रयोग मिलता है। उस समय विद्या प्रदान करने का कार्य ब्राह्मण के अधीन था।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि। [6]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में शिक्षक के लिए शाक्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

शक्तस्येव वदति शिक्षमाणः। [7]

वैदिक काल में शिक्षार्थी का सामान्य अभिधान ब्रह्मचारी था। ऋग्वेद में ऐसे ब्रह्मचारी का उल्लेख है, जो विद्याग्रहण करने के लिए सर्वत्र ब्रह्मज्ञनियों के पास जाता हुआ देवताओं का अङ्ग बनता है।

ब्रह्मचारी चरति देविषाद्विषः सः देवानां भवत्येकङ्गम्। [8]

छान्दोग्य उपनिषद में दो प्रकार के ब्रह्मचारी का उल्लेख है। एक जो आचार्यकुल में निवास करके विद्याध्ययन पश्चात् गृह आ जाता था। दूसरा आजीवन आचार्यकुल में रहकर अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता था।

त्रयो धर्मस्य स्कन्धा यज्ञो-ध्ययनं दानमिति। प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुले-वसादयन्।[9]

नित्य जंगल में जाकर समीधा लाना, भिक्षाटन तथा आचार्य की आज्ञा का पालन करना ये सब ब्रह्मचारी के कार्य थे। इन सभी कार्यों का अपना महत्व रहा है। समिधा लाने के कर्म से ब्रह्मचारी के अन्दर अपने कर्तव्यों को निभाने का गुण उत्पन्न होता था। भिक्षाटन मृत्यु के समान कार्य था। इससे अभिमान खत्म होता था। श्रेष्ठ जन से ही भिक्षा ग्रहण करनी होती थी। आचार्य की आज्ञा पालन से श्रेष्ठ आदर्श जीवन में आता है जहाँ अपनी इच्छाओं को पहल न देते हुए बड़ों की इच्छाओं का आदर-सत्कार होता था।

वैदिक काल में शिक्षा प्रदान करने के लिए तीन प्रमुख संस्थायें थीं – आश्रम, परिषद और सम्मेलन। निर्धारित समय में विधिवत् शिक्षा प्रदान करने वाले केन्द्र आश्रम कहलाते हैं। इन्हीं को ही गुरुकुल या आचार्यकुल भी कहा जाता था। उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए परिषदें भी हुआ करती थी, ये उनके लिए होती थी, जो विद्यार्थी जीवन व्यतीत करने के बाद अपने को सत्य और ज्ञान की खोज में लगाते थे। तीसरी संस्था सम्मेलन को राजाओं द्वरा आयोजित की जाती थी, जिसमें दूर-दूर से विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया जाता था।

वैदिक काल में कई विषयों की शिक्षा दी जाती थी। छान्दोग्य उपनिषद में नारद और सनत्कुमार के संवाद के माध्यम से तत्कालीन शिक्षा के विधि विषयों का संकेत मिलता है। यहाँ पर अध्ययन के विषय के रूप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, इतिहास, पुराण, पितृविद्या, राशिविद्या, देवविद्या, निधिविद्या, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या तथा देवजनविद्या का उल्लेख किया है। नारद ने इन विद्याओं का अध्ययन किया था।

स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं, पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं। देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि।।[10]

इनके अतिरिक्त लौकिक विद्याओं की भी शिक्षा आश्रमों में दी जाती थी। लौकिक विद्याओं के अध्ययन में शिष्य की रूचि का

विशेष ध्यान रखा जाता था। वैदिक काल में शिक्षा देने का कार्य पिता द्वारा भी किया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त उच्च शिक्षा भी पिता अपने पुत्र को प्रदान करता था। यदि पिता उस विषय का ज्ञाता नहीं हो, तो आचार्य के पास भेज देता था।

वैदिक काल में शिक्षा की समुन्नत स्थिति का कारण तत्कालीन समाज की शिक्षा के प्रति उदात्त भावना थी। समाज में आचार्य और ब्रह्मचारी का सम्मान राजा से भी बढकर होता था। शिक्षा समाप्त होने पर ब्रह्मचारी को माता-पिता, आचार्य का सत्कार करने की शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान समय में तो गुरुकुल परम्परा क्षीण होती नजर आ रही है। यदि आदर्श समाज की चाह है तो शिक्षा पद्धति पर ध्यान देना आवश्यक है। शिक्षा पद्धति जितनी सुदृढ होगी, समाज उतना ही सुदृढ, व्यवस्थित तथा मर्यादित होगा। वर्तमान में समाज का जो बिगड़ा हुआ रूप नजर आ रहा है उसका सबसे बड़ा कारण शिक्षा व्यवस्था का ठीक न होना ही है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहाँ लोक व्यवहार के साथ शास्त्रों का भी अध्ययन हो, जिससे बहुमुखी प्रतिभा का विकास हो पाये। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो सभा का आदर-सत्कार करना सिखाए, जहाँ स्वयं से पहले दूसरों को पहल दी जाए। सर्वप्रथम तो हम परिवार से सीखते हैं फिर विद्यालय में अध्यापकों से। सबसे ज्यादा समय अध्ययन में व्यतीत होता है, जो आधुनिक युग में विद्यालयों में होता है तो विद्यालयों की व्यवस्था बहुत सभ्य और सुदृढ हो। विद्यार्थी और अध्यापक का वापसी तालमेल दृढ हो। उच्च से उच्चतम शिक्षा ग्रहण करते हुए समाज में एक आदर्श स्थापित हो सके।

सहायकग्रन्थाः

1. मनुस्मृति – 2.6
2. ऋग्वेद – 5.2.7
3. वसिष्ठ धर्मसूत्र – 13.17
4. तैत्तिरीय उपनिषद – 1.11
5. अथर्ववेद – 6.74.1
6. निरुक्त – 2.3
7. ऋग्वेद – 7.103.5
8. वही – 10.109.5
9. छा.उ. – 2.23.1
10. वही – 7.1.2